

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 19: हिरण्याक्ष का वध

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने ही हाथ से गदा छूट जाने पर भी, वराह भगवान् अपने निःशस्त्र शत्रु के न्यायपूर्ण आचरण का सम्मान करते हैं — और फिर, हँसते हुए, उस घूर्णयमान चक्र का स्मरण करते हैं जो अन्ततः इस दीर्घ तथा भीषण संग्राम को समाप्त करेगा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इससे पूर्व अध्याय में वराह भगवान् तथा दैत्य हिरण्याक्ष क्षीरसागर के तट पर गदा-युद्ध में संलग्न छोड़े गए थे, उनके प्रहारों से रक्त बह रहा था, सन्ध्या का भयावह समय समीप आ रहा था, तथा स्वयं ब्रह्मा भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे कि दैत्य के और बलवान होने से पूर्व ही संग्राम समाप्त कर दिया

जाए। अध्याय 19 उसी संग्राम को अपने अन्तिम निष्कर्ष तक ले जाता है — किन्तु उस प्रकार से नहीं जिस सामान्य युद्ध-कथा की अपेक्षा पाठक करे। जो आगे होता है वह अस्त्रों से उतना नहीं, जितना आचरण से निर्णीत होने वाला संग्राम है: एक दैत्य जो निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार करने से इन्कार करता है, एक भगवान् जो अपनी महत्तर शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व उस संयम का सम्मान करते हैं, माया का एक ऐसा तूफान जिसका सामना क्रोध से नहीं अपितु प्रकाश से किया जाता है, तथा एक ऐसी मृत्यु जो इतनी शान्त है कि उसे देखने वाले देवता भी केवल यही आश्चर्य कर सकते हैं कि परमपुरुष के अपने हाथ से इस संसार से मुक्त हो जाने का क्या अर्थ है। मैत्रेय, विदुर को सम्बोधित करते हुए, कथा को उसके दीर्घ-प्रतीक्षित निष्कर्ष तक ले जाते हैं; तथा अन्त में, एक अन्तिम मोड़ में, ढाँचा पुनः विस्तृत होता है जब सूत गोस्वामी नैमिषारण्य के सन्तों को यह बताते हैं कि इसे मात्र सुनने से क्या प्राप्त होता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 19 (एकोनविंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: हिरण्याक्ष का वध
- मुख्य वक्ता: मैत्रेय, विदुर को अपना वर्णन जारी रखते हुए (श्लोक 1-29, 31-32); देवताओं की अपनी स्तुति का एक प्रत्यक्ष-कथन-प्रविष्टि (श्लोक 30); तथा सूत गोस्वामी, शौनक तथा नैमिषारण्य के सन्तों की सभा को पुनः सम्बोधित करते हुए (श्लोक 33-38)
- मुख्य श्रोता: मैत्रेय के वर्णन के भीतर विदुर; बाह्यतम स्तर पर शौनक तथा नैमिषारण्य में उपस्थित सन्तगण
- मुख्य स्थल: क्षीरसागर की सतह, जहाँ अध्याय 18 में आरम्भ हुआ संग्राम वराह भगवान् तथा हिरण्याक्ष के मध्य आगे बढ़ता तथा समाप्त होता है
- मुख्य विषय: वराह-हिरण्याक्ष द्वन्द्व की चरम परिणति — युद्ध में दैत्य का न्यायपूर्ण आचरण, भगवान् द्वारा सुदर्शन चक्र का आवाहन, दैत्य की माया का तूफान तथा उसका विनाश, भगवान् के स्पर्श से उसकी अन्तिम मृत्यु, देवताओं की कृतज्ञता-स्तुति, तथा इस कथा को सुनने का आध्यात्मिक फल
- मुख्य श्लोक-संख्या: स्कन्ध 3, अध्याय 19, श्लोक 1-38
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

प्रेम से परिपूर्ण दृष्टि

अठारहवाँ अध्याय ब्रह्मा के, सन्तों से घिरे हुए, भगवान् से प्रार्थना करने पर समाप्त हुआ था कि खतरनाक सन्ध्याकाल पूर्णतः आने से पहले द्वन्द्व समाप्त कर दिया जाए। अध्याय 19 उस प्रार्थना के प्रति भगवान् के उत्तर से आरम्भ होता है — और वह उत्तर शीघ्रता नहीं, अपितु स्नेह है।

मैत्रेय ने आगे कहा: ब्रह्मा के छल-रहित तथा अमृत के समान मधुर वचनों को सुनकर, भगवान् ने हृदय से हँसते हुए प्रेम से भरी दृष्टि के साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। (श्लोक 1)

एक सृष्टि-व्यापी संग्राम के, जो स्वयं पृथ्वी के भाग्य हेतु लड़ा जा रहा है, चरम बिन्दु पर भी, यह ग्रन्थ भगवान् की सजगता की गुणवत्ता को नोट करने हेतु ठहरता है: कठोर संकल्प नहीं, सैन्य गणना नहीं, अपितु अपने ही शुभचिन्तक भक्त के प्रति निर्देशित हास्य तथा प्रेम। यह हिंसा पुनः आरम्भ होने से पहले एक स्मरण है कि दृश्य की सतह के नीचे वास्तव में क्या शासन करता है।



दैत्य के प्रत्याघात से भगवान् के अपने ही हाथ से छूटकर, गदा स्वयं ही घूमती हुई वायु में गिरती है — यह पहला संकेत है कि संग्राम का यह अन्तिम चरण किसी भी योद्धा की अपेक्षा के अनुरूप नहीं होगा (श्लोक 2-3)।

वह गदा जो गिरी, तथा वह दैत्य जिसने प्रहार नहीं किया

आगे जो होता है वह अध्याय के सर्वाधिक विस्मयकारी अंशों में से एक है, ठीक इसलिए क्योंकि यह इस विषय में पाठक की अपेक्षाओं को उलट देता है कि देवता तथा दैत्य के मध्य युद्ध में कौन न्यायपूर्ण आचरण करता है।

तत्पश्चात् दिव्य वराह उछले तथा निर्भय होकर सामने खड़े अपने शत्रु की ठोड़ी पर अपनी गदा का लक्ष्य साधा। किन्तु दैत्य द्वारा अपनी ही गदा से आघात किए जाने पर, वह भगवान् के हाथ से छूट गई तथा घूमती हुई गिरते समय दिव्य प्रतीत हुई — यह मानो कोई चमत्कार ही था। यद्यपि उसे प्रहार करने का उत्तम अवसर प्राप्त था, तथापि दैत्य ने निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार करने से इन्कार कर दिया, एकल-युद्ध के नियम का सम्मान करते हुए, और इसी संयम ने विश्वम्भर भगवान् के क्रोध को प्रज्वलित कर दिया। (श्लोक 2-4)

इस क्षण की विचित्रता पर रुककर विचार करने योग्य है: संसारों का संहारक हिरण्याक्ष, वह दैत्य जिसने दो अध्यायों तक डींगें हाँकी तथा उपहास किया, यहाँ स्थिति की अपेक्षा से कहीं अधिक सतर्कता से न्यायपूर्ण युद्ध की एक संहिता का पालन करता दिखाई देता है — और यह ठीक यही संयम है, न कि कोई प्रहार, जो “विश्वम्भर भगवान् के क्रोध को प्रज्वलित” करता है। ग्रन्थ इस क्रोध को निःशस्त्र किए जाने पर आए क्रोध के रूप में स्पष्ट नहीं करता। आगे के वर्णन के साथ पढ़ने पर, यह इस रूप में प्रतीत होता है कि भगवान् इस दैत्य में, उसके अपराधों के बावजूद, अब भी सम्मान के योग्य गरिमा की एक झलक पहचानते हैं — तथा अब समय आ गया है कि संग्राम को समान द्वन्द्व की भाँति चलने देने के स्थान पर, पूर्ण शक्ति के साथ यथोचित रूप से समाप्त किया जाए।

गदा गिरने पर तथा दर्शक देवताओं तथा सन्तों में भय का उद्धोष उठने पर, सर्वशक्तिमान भगवान् ने दैत्य के न्यायपूर्ण आचरण को स्वीकार करते हुए अपने सुदर्शन चक्र का आवाहन किया। (श्लोक 5) चक्र के भगवान् के हाथ में घूमना आरम्भ करते ही, ऊपर विमानों में बैठे अज्ञात कण्ठों से — जो भगवान् की वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ थे — यह पुकार उठी: “आपकी विजय हो। कृपया इसे शीघ्र समाप्त करें, अब इसके साथ और न खेलें!” (श्लोक 6)



अपना लाभ उठाने के स्थान पर अपने शत्रु के न्यायपूर्ण आचरण का सम्मान करते हुए, भगवान् गिरी हुई गदा को वहीं छोड़ देते हैं तथा इसके स्थान पर अपने सुदर्शन चक्र का स्मरण करते हैं, जिससे संग्राम का अन्तिम तथा निर्णायक चरण आरम्भ होता है (श्लोक 4-6)।

गदा से खेलना, गरुड़ की भाँति उसे पकड़ना

चक्र के आवाहित हो जाने पर भी, भगवान् उसका तुरन्त प्रयोग नहीं करते। इसके स्थान पर, वास्तविक अन्त आने से पूर्व, श्लोक-दर-श्लोक, सहज निपुणता का लगभग क्रीड़ात्मक प्रदर्शन होता है।

भगवान् को चक्र से सुसज्जित देखकर, दैत्य की इन्द्रियाँ आक्रोश से अभिभूत हो गई; सर्प के समान फुफकारते हुए, क्रोध में अपने होंठ काटते हुए, वह आकाश में उछला तथा भगवान् पर अपनी गदा का लक्ष्य साध कर चिल्लाया, “अब तुम मारे गए!” यज्ञ-स्वरूप भगवान् ने उसे अपने बाएँ पैर से क्रीड़ापूर्वक गिरा दिया, यद्यपि वह तूफान के वेग से उन पर आई थी। (श्लोक 7-9) “अपना अस्त्र उठाओ तथा पुनः प्रयत्न करो,” भगवान् बोले, “जैसा कि तुम मुझे परास्त करने हेतु उत्सुक हो।” इन शब्दों से ललकारे जाने पर, दैत्य ने पुनः अपनी गदा फेंकी तथा ऊँचे स्वर में गरजा। जब भगवान् ने उसे अपनी ओर आते देखा, तो वे दृढ़ खड़े रहे तथा उसे उसी सहजता से पकड़ लिया जिस सहजता से गरुड़, पक्षियों के राजा, किसी सर्प को पकड़ लेते हैं। (श्लोक 10-11) महान दैत्य अपमानित अनुभव करता हुआ तथा अपनी पराक्रम इस प्रकार विफल हुई देखकर लज्जित हुआ, तथा श्रीहरि द्वारा वापस दी जा रही उसी गदा को लेने में भी अनिच्छुक रहा। (श्लोक 12)



अपने पैर की मात्र एक क्रीड़ात्मक गति से, भगवान् दैत्य की उस गदा को परे कर देते हैं जो तूफान के पूर्ण वेग से फेंकी गई थी — यह हताश प्रतिरक्षा नहीं, अपितु सहज निपुणता का प्रदर्शन है (श्लोक 9-11)।

इस क्रम में दैत्य के अभिमान के लिए विशेष रूप से कुछ शान्त किन्तु विनाशकारी है: भगवान् हिरण्याक्ष के आक्रमण से बचने हेतु संघर्ष नहीं कर रहे हैं; वे उसके साथ खेल रहे हैं, संसार-कम्पायमान बल से फेंके गए अस्त्र को उसी सहजता से पकड़ रहे हैं जिस सहजता से कोई फेंका हुआ पत्थर वायु से उठा ले, तथा फिर उसे वापस कर देते हैं। दैत्य द्वारा किया गया प्रत्येक आगे बढ़ता प्रयास समान बल से नहीं, अपितु ऐसी सहजता से उत्तर पाता है जो किसी भी उपदेश से कहीं अधिक स्पष्टता से उनके मध्य वास्तविक अन्तर को प्रकट कर देती है।

त्रिशूल, मध्य-आकाश में खण्डित

अपमानित किन्तु अदम्य, दैत्य एक और भी भयंकर अस्त्र की ओर हाथ बढ़ाता है।

अब उसने अग्नि के समान प्रचण्ड एक त्रिशूल उठाया, जिसे उसने यज्ञ-स्वरूप भगवान् पर फेंकने हेतु लिया — मानो कोई पवित्र ब्राह्मण के विरुद्ध दुष्ट मन्त्रों का प्रयोग कर रहा हो। महाबली दैत्य द्वारा पूर्ण बल से फेंके जाने पर, वह प्रज्वलित त्रिशूल आकाश में और भी तेज चमकने लगा। किन्तु श्रीहरि ने उसे अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र से टुकड़े-टुकड़े कर दिया, ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र ने कभी गरुड़ का एक पंख काट दिया था। (श्लोक 13-14) अपने त्रिशूल के खण्डित होने से क्रुद्ध होकर, दैत्य आगे बढ़ा तथा ऊँचे स्वर में गरजते हुए भगवान् की श्रीवत्स-चिह्नित विशाल छाती पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार किया, तथा फिर अदृश्य हो गया। इस प्रकार प्रहार किए जाने पर भी, आद्य वराह के रूप में प्रकट भगवान् के शरीर के किसी भी अंग में तनिक भी कम्पन नहीं हुआ, ठीक वैसे ही जैसे किसी हाथी को पुष्प-माला से आघात करने पर नहीं होता। (श्लोक 15-16)



दैत्य के पूर्ण बल से फेंका गया, प्रज्वलित त्रिशूल उड़ते समय और भी तेज चमकता है — किन्तु भगवान् के तीक्ष्ण धार वाले चक्र से मध्य-आकाश में ही खण्डित हो जाता है, वही अस्त्र जिसका प्रयोग कभी इन्द्र ने गरुड़ के एक पंख के विरुद्ध किया था (श्लोक 14)।

अध्याय में इस स्थान पर, गरुड़-तुलना को स्पष्ट करने वाला एक टिप्पणी सम्मिलित है: एक समय, अपनी माता विनता को अपनी सौतेली माता कद्रू (सर्प-जाति की माता) के दासत्व से मुक्त कराने हेतु, गरुड़ ने देवताओं का अमृत हर लिया था, तथा इसके प्रत्युत्तर में इन्द्र ने उन पर अपना वज्र फेंका; गरुड़, इन्द्र के अस्त्र को निष्फल न होने देने की इच्छा से, स्वेच्छा से अपना एक पंख उसके द्वारा खण्डित होने हेतु गिरा दिया। यह एक शत्रु की शक्ति का भी सम्मान करने की, न कि उसे पूर्णतः पराजित करने की, कथा है — एक ऐसा भाव जो अपने ढंग से, दैत्य के पूर्व के निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार न करने के इन्कार की प्रतिध्वनि करता है।

माया का तूफान

अस्त्र-दर-अस्त्र विफल होने के पश्चात्, दैत्य अन्ततः माया की ओर मुड़ता है — तथा ग्रन्थ आगे जो होता है उसका वर्णन वास्तविक सृष्टि-व्यापी भय के साथ करता है।

अब उसने योगमाया के स्वामी श्रीहरि के विरुद्ध अनेक इन्द्रजाल-कौशल का प्रयोग किया, जिसे देखकर लोग भयभीत हो गए तथा सोचने लगे कि सृष्टि का प्रलय समीप है। प्रचण्ड वायु बहने लगी, जिसने धूल से अन्धकार फैला दिया, तथा हर दिशा से पत्थरों की वर्षा होने लगी मानो वे गोफनों से फेंके जा रहे हों। स्वर्ग के प्रकाश-पुंज बादलों के समूहों से आच्छादित आकाश के पीछे अदृश्य हो गए, जो बिजली तथा गर्जन के साथ थे, तथा जो बार-बार मवाद, केश, रक्त, मल, मूत्र तथा अस्थियों की वर्षा करते थे। हर प्रकार के अस्त्र फेंकने वाले पर्वत प्रकट हुए, साथ ही त्रिशूलधारी, बिखरे केशों वाली नग्न राक्षसियाँ भी; तथा यक्षों तथा राक्षसों के गुण्ड-सम समूहों से, जो पैदल अथवा घोड़ों, हाथियों तथा रथों पर सवार थे, अत्यन्त क्रूर तथा बर्बर घोष उठने लगे। (श्लोक 17-21)



एक अन्धकारमय आकाश, प्रेतिल अस्त्र, तथा अलौकिक आकृतियों के समूह — दैत्य का अन्तिम उपाय बल नहीं अपितु माया का सम्पूर्ण तूफान है, जो सृष्टि के प्रलय को ही समीप प्रतीत कराने के लिए रचा गया है (श्लोक 17-21)।

यह एक ऐसा प्रसंग है जो उसके चित्रण में प्रयुक्त संयम को सार्थक बनाता है: यह वर्णन ग्रन्थ में इसलिए स्पष्ट तथा भयावह है क्योंकि इसे एक वास्तविक सृष्टि-व्यापी संकट के रूप में अभिप्रेत किया गया है, तथापि अध्याय इसे अपने आप में एक तमाशे के रूप में नहीं दर्शाता। इसका अस्तित्व उत्तर पाने हेतु है, और वह उत्तर तत्काल आता है।

अन्धकार के विरुद्ध प्रकाश

इस सम्पूर्ण कृत्रिम भय के तूफान के विरुद्ध, भगवान् का उत्तर एक ही, निर्णायक कृत्य है।

अपने स्वरूप में समस्त यज्ञों का प्रतिनिधित्व करने वाले भगवान् ने अब अपना प्रिय सुदर्शन चक्र छोड़ा, जो दैत्य द्वारा प्रदर्शित समस्त मायाओं को नष्ट करने में समर्थ था। (श्लोक 22) उसी क्षण, सहसा, दूर कहीं, दिति (हिरण्याक्ष की माता) के हृदय में एक कम्पन दौड़ गया जब उसे अपने पति कश्यप के वचन स्मरण आए; तथा उसके स्तनों से रक्त बहने लगा। (श्लोक 23)



सुदर्शन चक्र का एक ही प्रहार दैत्य के सम्पूर्ण माया-तूफान को नष्ट करने हेतु पर्याप्त है — जबकि, अदृश्य तथा दूर, उसकी माता दिति एक अकथनीय शोक-कम्पन का अनुभव करती है (श्लोक 22-23)।

यहाँ का सह-आयोजन जान-बूझकर तथा शान्त रूप से हृदयविदारक है: ठीक उसी क्षण जब दैत्य की शक्ति भंग होती है, उसकी माता — जिसे यह ज्ञात होने का कोई साधन नहीं है कि क्या हो रहा है — उसका परिणाम अपने ही शरीर में अनुभव करती है, एक ऐसा शोक जो समाचार पहुँचने से पहले ही पहुँच जाता है। यह अध्याय के सबसे कोमल तथा सबसे मार्मिक स्पर्शों में से एक है, यह स्मरण कराते हुए कि एक दैत्य की मृत्यु भी साधारण, पीड़ादायक, मातृ-प्रेम में तरंगें उत्पन्न करती है।

अन्तिम प्रहार

अपनी माया के नष्ट हो जाने पर, दैत्य एक अन्तिम, हताश शारीरिक प्रयत्न करता है।

अपनी माया-शक्तियों को नष्ट देखकर, वह पुनः भगवान् की उपस्थिति में गया तथा, क्रोध से परिपूर्ण होकर, उन्हें कुचलने हेतु अपनी भुजाओं में समेटने का प्रयत्न किया — किन्तु अपने अत्यधिक विस्मय तथा क्षोभ के साथ उसने पाया कि भगवान् उसकी भुजाओं के घेरे से बाहर खड़े थे। जब उसने वज्र से भी अधिक कठोर अपनी मुठ्ठियों से भगवान् पर प्रहार करना आरम्भ किया, तो इन्द्रियातीत अधोक्षज भगवान् ने उसके कान की जड़ में एक थप्पड़ मारा, ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र ने कभी दैत्य वृत्रासुर पर प्रहार किया था। सर्वविजयी भगवान् द्वारा लगभग उदासीनता से प्रहार किए जाने पर भी, दैत्य का शरीर घूमने लगा, उसके नेत्र-गोलक अपने कोटरों से बाहर निकल आए, तथा वह वायु से उखड़े हुए एक विशाल वृक्ष के समान गिर पड़ा, उसकी भुजाएँ, पैर तथा सिर के केश टूटकर बिखर गए। (श्लोक 24-26)

इसमें रक्तपात अथवा तमाशे पर कोई ठहराव नहीं है; ग्रन्थ तीन श्लोकों के अन्तराल में ही दैत्य की अन्तिम हताश पकड़ से उसके पतन तक चला जाता है — जिसे हिंसा पर अपने आप में ठहरने के स्थान पर एक उखड़े हुए वृक्ष की गरिमामय, लगभग कोमल छवि के माध्यम से वर्णित किया गया है। अध्याय जिस पर ठहरना चुनता है वह इसके आगे की बात है।

इस द्वंद्व को एक ही आघात में समाप्त करने के स्थान पर इतना विस्तार देने का एक गहरा कारण है। कथा पहले ही दिखा चुकी है कि जब हिरण्याक्ष ने भगवान् की छाती पर प्रहार किया, तब उन्हें एक पुष्प के स्पर्श से अधिक कुछ अनुभव नहीं हुआ (श्लोक 16) — वे कभी संकट में नहीं थे, और उन्हें अपनी रक्षा के लिए इस युद्ध की आवश्यकता कभी नहीं थी। इसके स्थान पर इस दीर्घ संघर्ष ने जो दिया, वह था प्रत्यक्ष सम्पर्क — दैत्य तथा भगवान् के शरीर के मध्य श्लोक-दर-श्लोक चलने वाला आदान-प्रदान, जो उस एक थप्पड़ में समाप्त होता है जो उसके जीवन का अन्त करता है (श्लोक 26), तथा उस मुखमण्डल में जिसे वह गिरते समय निहारता है (श्लोक 27-28)। जो आत्मा कभी भगवान् का अपना द्वारपाल जय था, उसके लिए यह अपने आप में दण्ड नहीं था, अपितु उसकी मुक्ति की स्वयं वही विधि थी — यह युद्ध ही वह आलिंगन था, चाहे कितना भी उग्र क्यों न हो, जिसके द्वारा एक पतित भक्त को पुनः घर की ओर खींचा गया।



सर्व-सीमाओं से परे भगवान् द्वारा लगभग उदासीनता से प्रहार किए जाने पर, दैत्य की तीव्र तथा दीर्घकालिक घृणा उस स्पर्श के क्षण में ही किसी ऐसी वस्तु में विलीन हो जाती है जिसे देखने वाले सन्त केवल एक धन्य मृत्यु ही कह सकते हैं — यह मुक्ति है, पराजय नहीं, जो अध्याय हमें यहाँ देखने हेतु कहता है (श्लोक 25-28)।

“ऐसी धन्य मृत्यु किसे प्राप्त हो सकती है!”

आते हुए सन्त गिरे हुए दैत्य को देखकर जो कहते हैं, वह इससे पूर्व की सम्पूर्ण घटना को नए अर्थ में ढाल देता है।

अब वहाँ पहुँचे ब्रह्मा तथा अन्यो ने दैत्य को भूमि पर पड़ा, अपने होंठ काटता हुआ, तथा उसके मुख की चमक अभी भी अक्षुण्ण देखा, तथा प्रशंसापूर्वक कहा: “अहो, ऐसी धन्य मृत्यु किसे प्राप्त हो सकती है! उस भगवान् के अग्रपाद से प्रहारित होकर — जिनका योगीजन एकान्त में योगाभ्यास द्वारा ध्यान करते हैं, अपनी अवास्तविक सीमितता से मुक्ति की खोज में — तथा उनके मुखमण्डल का दर्शन करते हुए, दिति के पुत्रों में शिरोमणि इसने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया है!” (श्लोक 27-28)

यही अध्याय के अन्त का धार्मिक हृदय है: किसी शत्रु पर विजय नहीं, अपितु एक मुक्ति पर आश्चर्य। जो सन्त एक दैत्य के विनाश को देखने आए थे, वे इसके स्थान पर उसके सौभाग्य की चर्चा करते हैं — भगवान् के अपने ही पैर से प्रहारित होकर, जीवन के अन्तिम क्षण में उनके मुख का सीधा दर्शन पाकर, मृत्यु में उसे उस दिव्य निकटता का उपहार मिला जिसे योगीजन भी एक जीवनकाल के एकान्त-साधना से पीछा करते

हैं। ब्रह्मा तब वह प्रकट करते हैं जो आरम्भ से ही सत्य रहा है: ये कोई साधारण दैत्य नहीं हैं, अपितु भगवान् के अपने ही अनुचर हैं — जय तथा विजय, जिन्हें एक बार हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष के रूप में जन्म लेने का शाप मिला था — जो कुछ और जन्मों के पश्चात् अन्ततः अपने वास्तविक, दिव्य धाम को लौट जाएँगे। (श्लोक 29)

समस्त यज्ञों के स्रोत को प्रणाम

इसे देखकर, देवता मात्र एक विजय का उत्सव नहीं मनाते; वे आराधना अर्पित करते हैं।

देवा ऊचुः

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्त्रवे

स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।

दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुन्तुद-

स्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥

devā ūcuḥ namo namas te 'khila-yajña-tantave sthitau gṛhītāmala-sattva-mūrtaye diṣṭyā hato 'yam jagatām aruntudas tvat-pāda-bhaktyā vayam īśa nirvṛtāḥ

अर्थ: देवताओं ने भगवान् को सम्बोधित किया: आपको बारम्बार प्रणाम, हे समस्त यज्ञों के स्रोत, जिन्होंने इस संसार के धारण हेतु शुद्ध सत्त्व से युक्त स्वरूप धारण किया है। हमारे सौभाग्य से यह दैत्य, जो संसारों हेतु एक यातना था, आपके द्वारा वध कर दिया गया है, तथा हे भगवान्, आपके चरणों में भक्ति के कारण अब हम भी शान्ति में हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 19, श्लोक 30)



देवता मात्र एक पराजित शत्रु का उत्सव नहीं मनाते — वे आराधना अर्पित करते हैं, भगवान् को समस्त यज्ञों के स्रोत के रूप में प्रणाम करते हुए, इससे पूर्व कि वराह भगवान् ब्रह्मा की स्तुति के मध्य अपने नित्य धाम को लौट जाएँ (श्लोक 30-31)।

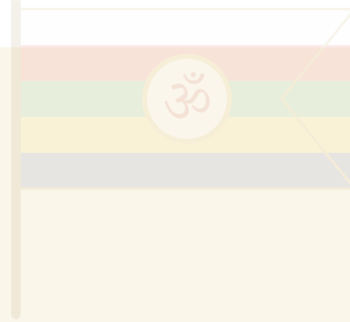
अजेय पराक्रम वाले हिरण्याक्ष का इस प्रकार वध करके, आद्य वराह के रूप में प्रकट श्रीहरि अपने ही दिव्य लोक को, जो निरन्तर आनन्द का धाम है, लौट गए, जबकि ब्रह्मा (जिनका आसन कमल पर है) तथा अन्यो ने उनकी स्तुति की। (श्लोक 31) मैत्रेय तब अपना वर्णन समाप्त करते हैं: “मैंने तुम्हें, जैसा मुझे अपने गुरु से बताया गया था, हे मेरे उत्तम मित्र, श्रीहरि के उन कर्मों का वर्णन किया है, तथा किस प्रकार उस महापराक्रमी हिरण्याक्ष को उन्होंने उस महान संग्राम में किसी क्रीड़ा-वस्तु के समान गिरा दिया।” (श्लोक 32)

सूत के समापन-वचन: इस कथा को सुनने का फल

यहाँ अध्याय अपना अन्तिम, सुनिश्चित मोड़ लेता है, मैत्रेय तथा विदुर से पूर्णतः हटकर सूत गोस्वामी को नैमिषारण्य के सन्तों से पुनः यह बताने का अवसर देता है कि यह कथा वस्तुतः किसलिए है।

मैत्रेय द्वारा वर्णित इस कथा को सुनकर, भगवान् के महान भक्त विदुर को परम आनन्द प्राप्त हुआ। पवित्र यश तथा विस्तृत ख्याति वाले सद्गुरुओं के जीवन-वृत्तान्त को सुनकर भी मनुष्य आनन्दित होता है; तब श्रीवत्स-चिह्नधारी भगवान् की कथा सुनने के आनन्द की कोई सीमा ही नहीं हो सकती। (श्लोक 33-34) सूत यह भी स्मरण कराते हैं कि इसी भगवान् ने कभी उस श्रेष्ठ हाथी को, जो मगरमच्छ द्वारा पकड़े जाने पर अपनी भयभीत साथियों की चीत्कारों के मध्य भगवान् के चरण-कमलों पर अपना मन स्थिर कर बैठा था, शीघ्र ही उस कठिन स्थिति से मुक्त कर दिया था — यह भागवत की अपनी परवर्ती, प्रसिद्ध गजेन्द्र-मोक्ष कथा की ओर एक अग्र-सन्दर्भ है, जो यहाँ केवल इस उदाहरण हेतु दिया गया है कि भगवान् उस व्यक्ति की कितनी पूर्णता से रक्षा करते हैं जो उनकी शरण में आता है। (श्लोक 35)

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं
धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ।
प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं
नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥ ३८ ॥



*etan mahā-puṇyam alaṁ pavitraṁ dhanyaṁ yaśasyaṁ padam āyur-āśīṣām prāṇendriyāṇām
yudhi śaurya-vardhanaṁ nārāyaṇo 'nte gatir aṅga śṛṇvatām*

अर्थ: यह अत्यन्त पवित्र कथा असाधारण पुण्य, शुद्धता, धन, यश, दीर्घायु तथा समस्त इच्छित वस्तुएँ प्रदान करती है; युद्धभूमि में यह प्राणेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की शक्ति बढ़ाती है; तथा जो इसे जीवन के अन्तिम क्षण में सुनते हैं, हे प्रिय मित्र, उन्हें भगवान् नारायण में शरण प्राप्त होती है। (स्कन्ध 3, अध्याय 19, श्लोक 38)

सूत पूछते हैं, ऐसा कृतज्ञ प्राणी कौन होगा जो ऐसे स्वामी के प्रति समर्पित न हो जाए — जो केवल उन्हीं से रक्षा माँगने वाले निष्कपट जनों से इतनी सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं, भले ही अधर्मी जनों को उन्हें प्रसन्न करना कठिन प्रतीत हो? जो कोई इस अत्यन्त अद्भुत लीला को — पृथ्वी की रक्षा हेतु वराह-रूप धारण करने वाले भगवान् के हाथों हिरण्याक्ष के विनाश की इस कथा को — सुनता है, गाता है, अथवा प्रशंसा भी करता है, वह ब्रह्महत्या के पाप से भी शीघ्र तथा पूर्णतः मुक्त हो जाता है। (श्लोक 36-37) अध्याय की अन्तिम प्रतिज्ञा उसकी सबसे कोमल प्रतिज्ञा है: कि यह कथा, जीवन के अन्तिम क्षण तक हृदय में धारण की जाए तो, स्वयं ही नारायण की उपस्थिति का द्वार बन जाती है।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. संघर्ष में भी, गरिमा को हर सीमा के पार पहचाना जा सकता है। निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार न करने का दैत्य का इन्कार, तथा उस संयम के प्रति भगवान् का स्पष्ट सम्मान, दर्शाता है कि सम्माननीय आचरण को ग्रन्थ स्वयं सम्मान देता है, चाहे वह किसी में भी क्यों न प्रकट हो (श्लोक 3-5)।
2. वास्तविक निपुणता को परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती। भगवान् का दैत्य की गदा के साथ क्रीड़ात्मक व्यवहार — “उसी सहजता से पकड़ना जिस सहजता से गरुड़ किसी सर्प को पकड़ते हैं” — एक ऐसी शक्ति को दर्शाता है जो इतनी पूर्ण है कि उसे कभी हताश अथवा प्रयत्नशील प्रतीत होने की आवश्यकता ही नहीं (श्लोक 9-12)।
3. माया, चाहे कितनी भी विशाल क्यों न हो, स्पष्टता के एक ही कृत्य से नष्ट हो जाती है। दैत्य का सम्पूर्ण माया-तूफान — अन्धकार, दुर्गन्धित वर्षा, प्रेतिल सेनाएँ — सुदर्शन चक्र के छूटते ही ढह जाता है; कोई भी माया, चाहे कितनी भी विस्तृत क्यों न हो, वास्तविक स्पष्टता के समक्ष अधिक देर तक टिक नहीं सकती (श्लोक 17-22)।
4. कठिन मृत्यु भी अन्त नहीं, अपितु एक द्वार हो सकती है। हिरण्याक्ष की मृत्यु पर सन्तों की विस्मित प्रतिक्रिया — “ऐसी धन्य मृत्यु किसे प्राप्त हो सकती है!” — उसके पतन को पूर्णतः नए अर्थ में ढाल देती है: भगवान् के अपने ही पैर से प्रहारित तथा उनके मुख का दर्शन करते हुए, वह उस अवस्था को प्राप्त होता है जिसे योगीजन भी जीवनभर की साधना से खोजते हैं (श्लोक 27-28)।
5. कुछ भी वास्तव में भगवान् की योजना से बाहर नहीं है। ब्रह्मा का यह रहस्योद्घाटन कि हिरण्याक्ष, वास्तव में, भगवान् का अपना ही नित्य अनुचर था जो एक निश्चित मार्ग से घर लौट रहा है, इस सम्पूर्ण भयावह प्रसंग को एक विशालतर, करुणामय योजना के भाग के रूप में पुनःपरिभाषित करता है (श्लोक 29)।
6. कृतज्ञता, विजय नहीं, मुक्ति का उचित उत्तर है। देवता किसी गिरे हुए शत्रु पर अहंकार नहीं करते; वे तत्काल आराधना की ओर मुड़ते हैं, यह पहचानते हुए कि उनकी अपनी शान्ति भगवान् के चरणों में भक्ति का उपहार है, न कि उनकी स्वयं की विजय (श्लोक 30)।
7. मात्र इस कथा को सुनना ही अपने आप में एक आध्यात्मिक साधना है। सूत के समापन-श्लोक श्रद्धापूर्वक सुनने वाले किसी भी व्यक्ति को पुण्य, शुद्धता, पराक्रम, तथा जीवन के अन्तिम क्षण में नारायण की शरण का वचन देते हैं — कथा का कथन ही उसके स्वयं के आशीर्वाद से अविभाज्य रूप में प्रस्तुत है (श्लोक 33-38)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के अपनी हिंसा को समाप्त करने के ढंग में एक विशेष प्रकार का सुख निहित है। तीनों लोकों को त्रस्त करने वाला एक दैत्य केवल विनष्ट होकर विस्मृत नहीं हो जाता; उसकी मृत्यु ऐसे सन्तों द्वारा साक्षी की जाती है जो इसे धन्य कहते हैं, ब्रह्मा द्वारा एक पतन के वेश में एक घर-वापसी के रूप में समझाई जाती है, तथा ऐसे देवताओं द्वारा उत्तर पाती है जो अपने शत्रु के विनाश के उत्सव से नहीं, अपितु उस भगवान् के प्रति कृतज्ञता के स्तोत्रों से प्रत्युत्तर देते हैं जिन्होंने उन्हें मुक्त किया। यहाँ तक कि दिति, इसी दैत्य की माता, को भी कथा की कोमलता का एक क्षण दिया गया है — उसका अस्पष्टीकृत शोक इस बात का एक शान्त स्मरण है कि कोई भी मृत्यु, चाहे कितनी भी आवश्यक क्यों न हो, संसार

में कहीं न कहीं शोक की तरंग के बिना नहीं गुजरती। तथा फिर, अपने अन्तिम मोड़ में, अध्याय संग्राम से पूर्णतः बाहर आकर अपना वास्तविक दावा प्रस्तुत करता है: कि इस कथा का वास्तविक उपहार युद्ध का परिणाम नहीं है, अपितु कथा स्वयं है, जो इसे सुनने हेतु तत्पर किसी भी हृदय में वहन की जाती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने जीवन के किसी संघर्ष अथवा कठिनाई का स्मरण करें — भूतकाल का अथवा वर्तमान का — जहाँ आपने संयम अथवा सम्मान के एक क्षण से उत्तर दिया, अथवा चाहते थे कि दिया होता, यहाँ तक कि उस व्यक्ति के प्रति भी जो आपसे इसका पात्र नहीं था। विचार करें, जैसा यह अध्याय दर्शाता है, कि ऐसा संयम कभी व्यर्थ नहीं जाता; इसे किसी बड़ी वस्तु द्वारा पहचाना जाता है, भले ही वह अदृश्य ही क्यों न हो। फिर, इस बात पर भी विचार करें कि आपके अपने जीवन के भीषणतम भ्रम के तूफान — जो हिरण्याक्ष की माया के समान अभिभूत करने वाले प्रतीत होते हैं — वास्तविक स्पष्टता के आमन्त्रित होते ही विलीन हो जाते हैं। अपने दिन को आगे बढ़ाने से पूर्व, कुछ क्षण शान्त होकर बैठें तथा मृदुतापूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इसे, जैसा यह उस दैत्य के अन्तिम क्षण में हुआ था, मन को उस एकमात्र सत्ता पर स्थिर करने दें जो एक अन्त को भी घर-वापसी में परिवर्तित कर देती है।

उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय वराह-हिरण्याक्ष संग्राम को उसके दीर्घकाल से निर्मित होते निष्कर्ष तक ले जाता है, और ऐसा एक संयम के साथ करता है जो उसके विषय के अनुरूप है। दैत्य के न्यायपूर्ण आचरण का सम्मान किया जाता है इससे पूर्व कि उसका उत्तर महत्तर शक्ति से दिया जाए; उसकी माया के तूफान का सामना समान क्रोध से नहीं अपितु स्पष्टता के एक ही कृत्य से किया जाता है; तथा उसकी मृत्यु, जिस पर ठहरा नहीं जाता, उसे देखने वाले सन्तों द्वारा ही एक धन्य मुक्ति में रूपान्तरित कर दिया जाता है — भगवान् के अपने ही नित्य अनुचर की घर-वापसी, जो कुछ समय हेतु संसारों के शत्रु का वेश धारण किए हुए था। देवता विजय से नहीं, अपितु आराधना से उत्तर देते हैं, तथा अध्याय का अन्तिम आन्दोलन युद्धभूमि से पूर्णतः पीछे हटकर अपना गहनतम दावा प्रस्तुत करता है: कि यह कथा, केवल श्रद्धापूर्वक सुनी जाए तो, अपने भीतर पुण्य, शुद्धता, तथा — जीवन के अन्तिम क्षण में — स्वयं नारायण की उपस्थिति का द्वार वहन करती है।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-राशि हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, उन्नीसवाँ अध्याय, पृष्ठ 218–222।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र जी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा सिफारिश के अनुसरण में प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दर्शाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई सूचन नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-19-hiranyaksha-ka-vadh.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

